लक्ष्म्प्पा भीम्प्पा हल्सगेरी जरिये विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य

बनाम

हनुमप्पा शेट्टप्पा कोरवार एवं अन्य

13 अप्रैल, 2004

[एस. राजेंद्र बाबू, डॉ. ए. आर. लक्ष्मणन और जी. पी. माथुर, न्यायाधिपतिगण]

कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम, 1964; धारा 133/कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम; धाराये 5, 132 & 133 / बॉम्बे किरायेदारी और कृषि भूमि अधिनियम, 1948; धारा 64 (3):

बेटे द्वारा दायर विवादित भूमि के स्वामित्व की घोषणा के लिए वाद - वाद भूमि के आधे हिस्से के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा वाद डिक्री किया गया - प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए पलट दिया गया कि हालांकि प्रथम प्रतिवादी और उसकी माँ के पास वाद भूमि में स्वामित्व अधिकार हैं, लेकिन ये अधिकार 1.3.1974 से सरकार को भूमि सौंपने के बाद से समाप्त हो गए हैं, जो जमीन मालिक और किरायेदारों के अधिकारों के अधीन है - उच्च न्यायालय द्वारा अपील स्वीकार की गई जिसमें प्रथम प्रतिवादी को सह-प्रतिवादी को मुकदमा भूमि के कब्जे की वसूली के लिए हकदार मालिक के रूप में रखा गया है - उच्च न्यायालय द्वारा वापस लिया गया निर्णय लेकिन बाद में कुछ अतिरिक्त कारणों के साथ अपने पहले के विचार की पुष्टि की - अपील पर, अभिनिर्धारित: पहले अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष कि भूमि राजस्व प्राधिकरण के अभिलेखों में, अपीलकर्ता/क्रेता एक किरायेदार था, उसे किरायेदार के रूप में माना जाएगा, लेकिन उसने बिक्री विलेखों के तहत अधिकार हासिल नहीं किया था जो अमान्य थे - हालाँकि, यह सवाल कि क्या वह

किरायेदार था, उसके द्वारा तय नहीं किया जा सकता था - यह कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरण द्वारा तय किया जाना चाहिए था-इसलिए, विचारण अदालतों द्वारा पारित की गई डिक्री को अपास्त किया गया और मामले को भूमि सुधार न्यायाधिकरण को न्यायनिर्णयन के लिए भेजने के लिए विचारण अदालत को भेज दिया गया - पक्षकारों को विचारण अदालत द्वारा मामले के निपटारे तक यथास्थिति बनाए रखने के लिए निर्देश जारी किए गए - निर्देश जारी किये गये।

न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को वापस लेना- का प्रभाव - अभिनिर्धारित : पूरा फैसला परेशान करने वाला था और अदालत के लिए तर्क से सहमत होने के लिए उपलब्ध नहीं था - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908।

प्रथम प्रतिवादी ने खुद को और अपने छोटे भाई को विवादित जमीन का मालिक घोषित करने के लिए और अन्य आकस्मिक राहतों के लिए, अपीलार्थी (क्रेता) के खिलाफ एक घोषणात्मक मुकदमा दायर किया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि मूल रूप से भूमि उसके अपने पिता के स्वामित्व में थी, जिसने दिनांक 26/4/1960 को एक रजिस्टर्ड विलेख निष्पादित करके विचाराधीन संपत्ति में अपने अधिकारो को पहले प्रतिवादी और उसके छोटे भाई के पक्ष में त्याग दिया था। बाद में, उनके पिता ने दिनांक 16.4.1963 को एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित करके उसी संपत्ति/भूमि को अपीलार्थी के पक्ष में बेच दिया। हालाँकि, अपीलार्थी ने दावा किया कि पहले प्रतिवादी के पिता ने उससे कुछ राशि उधार ली और उसके बदले में उसके पक्ष में वाद संपत्ति के संबंध में एक बंधक विलेख बनाया और बाद में उसने उससे और राशि उधार ली और वाद भूमि के संबंध में 60 साल की अवधि के लिए एक अग्रिम पट्टा विलेख निष्पादित किया। इस प्रकार उन्हें राजस्व अभिलेखों में किरायेदार के रूप में दिखाया गया था। बाद में, पहले प्रत्यर्थी के पिता और माँ ने उससे संपर्क किया, एक और राशि

ली और भूमि राजस्व प्राधिकरण से अपेक्षित अनुमति प्राप्त करने बाद मुकदमे की संपत्ति के कुछ हिस्से के संबंध में क्रमशः दिनांक 26.4.60 और दिनांक 16.12.60 को पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित किए।

विचारण न्यायालय ने वाद भूमि के आधे हिस्से के संबंध में वाद का फैसला सुनाया। अपील पर, विचारण अदालत के निष्कर्ष पहले अपीलीय अदालत द्वारा यह अभिनिर्धारित करने से परेशान थे कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपीलकर्ता पूरी भूमि के संबंध में किरायेदार बन गया; कि त्याग विलेख वैध नहीं था; कि चूंकि पहले प्रतिवादी की मां ने बिना भूमि राजस्व प्राधिकरण से अपेक्षित अनुमति प्राप्त करते हुए उसके स्वामित्व वाली भूमि के कुछ हिस्से के संबंध में बिक्री विलेख को निष्पादित किया था। अपीलार्थी के पक्ष में उस दस्तावेज़ में कोई अधिकार पारित नहीं किया जा सकता था; कि पहला प्रतिवादी, और उसके छोटे भाई की मृत्यु के बाद, उसकी माँ भूमि के कुछ हिस्से के संबंध में सह-मालिक थी लेकिन उनके स्वामित्व अधिकार दिनांक 1.3.1974 से समाप्त हो गए जब बॉम्बे टेनेंसी एंड एग्रीकल्चरल लैंड्स अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार किरायेदारी भूमि मे निहित अधिकार सरकार में निहित हो गये थे। उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील को यह अभिनिर्धारित करते हुए स्वीकार किया कि वाद भूमि के सह-स्वामी के रूप में प्रथम प्रतिवादी राहत का हकदार था जैसा कि वाद संपत्ति के कब्जे की वसूली के लिए दावा किया गया था। बाद में, उच्च न्यायालय ने अपने आदेश को वापस ले लिया और अंत में अतिरिक्त कारण बताते हुए पहले के फैसले से सहमति जताते हुए मामले का निस्तारण कर दिया। इसलिये, वर्तमान अपील।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया : 1.1 . उच्च न्यायालय ने केवल कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम, 1964 की धारा 133 का उल्लेख

किया यह कहने के लिये कि राजस्व अभिलेखों में कुछ प्रविष्टियों से संकेत मिलता है कि अपीलार्थी के पास भूमि का कब्जा नहीं था। तथापि, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने क्षेत्राधिकार वाले तहसीलदार द्वारा अनुमति के आदेश को संदर्भित करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि चूंकि इन दस्तावेजो में अपीलकर्ता को किरायेदार के रूप में वर्णित किया गया था, उसे अधिकारों के रिकॉर्ड में दिखाई देने वाली प्रविष्टियों के बावजूद एक किरायेदार माना जाना चाहिए। कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम, 1964 की धारा 133 के तहत उत्पन्न होने वाली धारणा अपने आप में पर्याप्त नहीं होगी और यदि इसे बाधित किया जा सकता है इस तरह की धारणा को किसी अन्य सामग्री के संदर्भ में तय किया जा सकता है। जबकि पहले अपीलीय न्यायालय ने तहसीलदार (प्रदर्श डी.-14) द्वारा दी गई अनुमति को महत्व दिया है, पर उच्च न्यायालय ने कहा कि इसका कोई परिणाम नहीं है। हालाँकि, मामले की परिस्थितियों में प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष अंतिम होता है। लेकिन उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दूसरे आदेश में इसने विभिन्न सिद्धांतों को निर्धारित किया जिनका वास्तव में इस मामले से कोई लेना-देना नहीं है। न्यायालय को अभिलेख पर दस्तावेजों के प्रभाव की जांच करनी थी और किसी न किसी तरह से निष्कर्ष पर पहुंचना था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इन दस्तावेजों के प्रभाव पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यह स्थापित किया गया था कि अपीलार्थी के पास केवल एक किरायेदार की क्षमता में वाद भूमि का अधिकार था और उसने प्रश्नगत बिक्री विलेखों के तहत स्वामित्व प्राप्त नहीं किया था क्योंकि उक्त बिक्री विलेख अमान्य थे। [101 - बी-सी-डी-ई}

1.2 . कोई भी दीवानी अदालत किसी भी सवाल का फैसला नहीं कर सकती है कि क्या विवादित जमीन एक कृषि भूमि है या क्या उस पर कब्जा करने का दावा करने वाला व्यक्ति 1.3.1974 पर उक्त भूमि का किरायेदार है या नहीं। अधिनियम की धारा 5 के अनुसार सभी किरायेदारियां समाप्त हो गईं। इस प्रकार, कर्नाटक भूमि

सुधारों अधिनियम की धारा 132 और 133 में क्या विचार किया गया है कि यदि 1.3.1974 को कोई मौजूदा किरायेदारी अधिकार है तो सिविल कोर्ट को किरायेदारी से संबंधित एक मुद्दा तैयार करना होगा और उसे न्यायाधिकरण को भेजना होगा। [102 - बी-सी]

1.3 . जब उच्च न्यायालय ने अपने पहले के आदेश को वापस ले लिया, तो संपूर्ण निर्णय परेशान हो गया और अदालत के लिए उस तर्क से सहमत होने या स्वीकार करने के लिए अब यह उपलब्ध नहीं था। [100 - एफ]

1.4 . सवाल यह है कि क्या 1.3.1974 को जब अधिनियम कब लागू हुआ तब अपीलार्थी प्रश्नगत भूमि के संबंध में किरायेदार था या नही, सिविल न्यायालय के द्वारा निर्णित नहीं किया जा सकता था। इसलिये अधीनस्थ न्यायालयो के द्वारा पारित डिक्रियां अपास्त की जाती है और प्रकरण को विचारण न्यायालय को बिंदु 10-ए को, भूमि सुधार न्यायाधिकरण को न्यायनिर्णय और रिपोर्ट करने के लिये भेजा जाता है और पक्षकार न्यायाधिकरण और विचारण न्यायालय के समक्ष मामलों के निस्तारण तक भूमि के कब्जे के संबंध में तब तक यथास्थिति बनाए रखेंगे। [102 - ई-एफ} 96

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार : सिविल अपील संख्या 2089/1998

आरएसए नंबर 205/1988 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 17.11.97 से।

एस. के. कुलकर्णी, एम. गिरीश कुमार, अंकुर एस. कुलकर्णी, के. नबीन सिंह और सुश्री संगीता कुमार अपीलार्थियों के लिये ।

राजेश महाले, आर. सी. कोहली और के. सी. सुंदरसन, प्रतिवादीगणो के लिये।

न्यायालय का निर्णय राजेन्द्र बाबू, न्यायाधिपति के द्वारा दिया गया था।

प्रथम प्रतिवादी द्वारा यह घोषणा के लिये और अन्य आनुषंगिक राहतों के लिए कब्जा एक दावा प्रस्तुत किया गया था कि वह और तीसरा प्रत्यर्थी फकीरव्वा मुकदमे की भूमि के मालिक हैं और मूल अपीलार्थी (लक्ष्मीप्पा) से कब्जा कब्जे के लिए हैं। उसने दावे में अपने पिता को दूसरे प्रतिवादी और अपनी माँ को तीसरे प्रतिवादी के रूप में पक्षकार बनाया था। यह दावा किया जाता है कि उनके पिता एक मितव्ययी थे; कि चूंकि वे और उनके छोटे भाई संयुक्त रूप से बने रहना नहीं चाहते थे और एक हजार रुपये की राशि प्राप्त करने पर दिनांक 26/4/1960 को एक पंजीकृत विलेख निष्पादित करके संयुक्त परिवार की संपत्ति में अपना हित त्याग दिया; कि इसके बाद वे और उनके छोटे भाई उक्त संपत्तियों के मालिक बन गए; कि लगभग 4 या 5 साल बाद उनके छोटे भाई की मृत्यु हो गई और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के संदर्भ में उनकी मां उनके हिस्से में उत्तराधिकारी बन गईं; कि इस प्रकार उक्त संपत्तियां उनके और उनकी मां के स्वामित्व और कब्जे में आ गईं; जब मामला इस तरह बना रहा, भले ही उनके पिता ने वाद अनुसूची भूमि में से अपने अधिकारों को त्याग दिया था, उन्होंने अपीलकर्ता के पक्ष में एक पंजीकृत बिक्री विलेख दिनांक 16/4/1963 को निष्पादित किया और उसे उसी पर कब्जा दे दिया; उसने दावा किया कि अपीलकर्ता के पक्ष में उक्त विक्रय उस पर और उसकी मां पर बाध्यकारी नहीं था।

अपीलार्थी ने दिनांक 26/4/1990 के हक त्याग विलेख के निष्पादन से इनकार किया और तर्क दिया कि चूंकि पहले प्रत्यर्थी के पिता ने ऋण लिया था और उसी के निर्वहन के लिये अपीलकर्ता से 2000 रूपये की राशि उधार ली और 1950 में आर. एस. संख्या 15/ए में पूरी भूमि के संबंध में कुल क्षेत्रफल 11 एकड़ 16 गुंटा के लिए उनके पक्ष में एक बंधक बनाया था। पुनः प्रथम प्रतिवादी के पिता ने 3000/- रुपये उधार लिए और 60 वर्षों की अवधि के लिए प्रत्यर्थी के पक्ष में एक अग्रिम पट्टा विलेख ('अगावु लावणी') निष्पादित किया और 11 एकड़ 16 गुंटा भूमि के पूरे एकड़ के

संबंध में 26.8.1952 पर एक पंजीकृत विलेख निष्पादित किया। उसका नाम एम. ई. 1014 में किरायेदार के रूप में राजस्व अभिलेखों में शामिल है और तब से उनके कब्जे में है। उस पट्टे के निर्वाह के दौरान पहले प्रत्यर्थी के पिता ने फिर से धन के लिए अपीलार्थी से पारिवारिक आवश्यकता के लिए और अपने पूर्व ऋणों का भुगतान करने के लिए संपर्क किया और रु 1000 लिये और अधिकार क्षेत्र के तहसीलदार से अपेक्षित अनुमति प्राप्त करने के बाद उस भूमि के उत्तरी हिस्से में 5 एकड़ 30 गुंटे की सीमा के संबंध में एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित किया; कि इस प्रकार अपीलार्थी 5 एकड़ 30 गुंटे के उस हिस्से का पूर्ण मालिक बन गया; कि पहले प्रतिवादी की माँ को भी पारिवारिक आवश्यकता के लिए पैसे की आवश्यकता थी और अपने पति द्वारा देय ऋण के निर्वहन के लिए रु 2000 उससे उधार लिये थे और उस ओर से प्रथम प्रतिवादी और उसके छोटे भाई, जो उस समय नाबालिग थे, के संरक्षक के रूप में कार्य करते हुए 16.12.1960 पर एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित किया; कि उस तारीख से वह पूर्ण मालिक भी बन गया और उसी के कब्जे में है; कि पहले प्रतिवादी के पिता, जिन्हें फिर से पैसे की आवश्यकता थी, ने अपीलार्थी के पक्ष में रुपये 1 हजार की राशि के लिए एक पंजीकृत बिक्री विलेख दिनांक 16/12/1960 को निष्पादित किया कुछ भूमि के संबंध में तहसीलदार की अनुमति प्राप्त करने के बाद और और इस प्रकार दिनांकित 16.12.1960 और 16.4.1963 उक्त दो बिक्री विलेख कानूनी रूप से वैध थे और प्रतिवादीगण संख्या 2 और 3 और वादी पर बाध्यकारी थे। इस तरह से, अपीलार्थी ने दावा किया कि वह एक किरायेदार के रूप में और बाद में एक पूर्ण मालिक के रूप में 11 एकड़ 16 गुंटा की पूरी सीमा का पूर्ण मालिक बन गया और एक किरायेदार के रूप में उक्त भूमि के कब्जे में बना रहा। उसने परिसीमा के बारे में कुछ विवाद भी उठाए और कहा कि उसने भूमि पर प्रतिकूल कब्जा करके अपने अधिकार को परिपूर्ण कर लिया था। उसने वैकल्पिक रूप से यह भी तर्क दिया कि यदि 16 अप्रैल 1963 का

हस्तांतरण विलेख अमान्य है, तो उनके किरायेदारी अधिकार प्रभावित नहीं हुए थे और दिनांक 1/3/1974 से किरायेदारी भूमि सरकार में निहित हो गई थी और इसलिए, वादी उससे कब्जे की राहत लेने का हकदार नहीं है। उसने यह भी तर्क दिया कि वाद में संदर्भित त्याग विलेख वास्तविक नहीं था और उसके अधिकारों को प्रभावित नहीं करता था; कि वादी और प्रतिवादी संख्या 2 और 3 एक संयुक्त परिवार के सदस्य बने रहे और दूसरा प्रतिवादी इसका प्रबंधक था।

इस आधार पर विचारण अदालत ने कई मुद्दे उठाए थे। दो मुद्दे किरायेदारी के संबंध में दावों के संदर्भ में हैं और वे हैंः

"10ए. यदि दिनांक 16.4.1963 की बिक्री विलेख अमान्य है तो क्या प्रतिवादी - 1 के किरायेदारी दिनांक 1.3.1974 को बने रहते है?

10 बी. क्या वादी कब्जे का हकदार है यदि प्रतिवादी-1 को दावे की दिनांक को किरायेदार माना जाता है।"

विचारण अदालत ने इन दो मुद्दों पर निम्नलिखित निर्णय दियाः

"25. मुद्दा No. 10B : इस वाद में कोई भी किरायेदारी अधिकार का कोई सवाल ही नहीं है। इसके लिए प्रतिवादी सं. 3 द्वारा बिक्री विलेख का निष्पादन करने के लिये तहसीलदार से कोई अनुमति नहीं ली गई थी। इसके अलावा, प्रतिवादी नं. 1 ने प्रतिवादी नं. 2 से बिक्री विलेख लिया है इस आरोप पर कि प्रतिवादी संख्या 2 वाद भूमि का स्वामी है। इससे पहले, प्रतिवादी संख्या 1 ने समझौता करके नाबालिग वादी और उसके भाई यालप्पा के स्वामित्व को मान्यता दे दी थी और बिक्री पत्र को अमान्य कर दिया था। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 2 से एक दस्तावेज़ लेने के बाद, वह अब तर्क नहीं कर सकता है कि वह वाद भूमि का किरायेदार है। इसलिए, मेरा मुद्दा संख्या 10बी पर निष्कर्षों का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है।

26. मुद्दा No.10A: प्रतिवादी नंबर 1 वाद भूमि का दिनांक 1/3/1974 को या मुक़दमे की तारीख को किरायेदार नहीं था।"

विचारण अदालत ने वाद भूमि के आधे हिस्से के संबंध में वाद को डिक्री किया।

अपील पर, विचारण अदालत के उक्त निष्कर्ष निराशाजनक थे और प्रतिवादी द्वारा किये गये दावे को खारिज कर दिया गया था।

विद्वान जिला न्यायाधीश ने देखा कि भूमि आर. एस. नं. 15 में शामिल कुल क्षेत्रफल 11 एकड 16 गुंटा दूसरे प्रतिवादी की पैतृक संपत्ति थी और इसलिये, वादी भी भूमि का सहदायिक था। लेकिन लेकिन अदालत में कई पंजीकृत दस्तावेज प्रदर्श पी-2, डी-10, डी-11, डी-13, डी-12 और डी-6 के रूप में दायर किए गए हैं। जैसा कि पहली अपीलीय अदालत ने पाया, पंजीकृत पट्टा विलेख दिनांक 26.4.1960 है, जो कि प्रदर्श पी-2 है, वाद भूमि के संबंध में किसी भ दर पर कार्यवाही नहीं की गई थी। प्रथम अपीलीयअदालत ने यह भी पाया कि प्रदर्श डी-10 जो 11 एकड 16 गुंटा की पूरी सीमा के संबंध में एक पंजीकृत पटटा विलेख है, कम से कम आंशिक रूप से प्रभावी हो गया क्योंकि स्वीकृत रूप से दूसरे प्रतिवादी ने पंजीकृत बिक्री विलेख प्रदर्श डी-11 दिनांक 26/4/1960 के अंतर्गत अपीलकर्ता को 5 एकड 30 गुंटा की उत्तरी सीमा उस बिक्री के संबंध में अधिकार क्षेत्र के तहसीलदार की अनुमति प्राप्त करने के बाद बेच दी थी। लेकिन उसी दिन उसने बिक्री विलेख एक्जी डी-11 और रिलीज विलेख एक्जी पी- 2 निष्पादित किया और दोनो दस्तावेजात पीडब्लू.2 के द्वारा लिखे गये थे। इसलिये प्रथम अपीलीय अदालत ने पाया कि पहले प्रतिवादी को नहीं सुना जा सकता है कि वह रिलीज विलेख के निष्पादन के बारे में नहीं जानता था क्योंकि वह दस्तावेज़ और प्रदर्श डी 11 एक साथ अस्तित्व में आये थे। इस प्रकार महत्व का प्रश्न यह है कि क्या विचारण अदालत को यह निष्कर्ष निकालने में उचित ठहराया गया था कि प्रदर्श डी-10

के तहत पहला प्रतिवादी मुकदमे की भूमि के संबंध में किरायेदार नहीं बना जो सर्वेक्षण संख्या का दक्षिणी हिस्सा है और यह कि रिलीज प्रदर्श पी.2 के तहत की गई कार्यवाही से प्रभावी थी। दूसरे प्रतिवादी को प्रदर्श डी-8 के तहत अपीलकर्ता के पक्ष में वाद भूमि की बिक्री को उसी दिनांक को तहसीलदार से अनुमति लेने के बाद प्रभावित करने का कोई अधिकार नहीं था, जैसा कि प्रदर्श डी-14 से साक्ष्य दिया गया है। हालाँकि, यदि यह निष्कर्ष निकाला जाना है कि प्रदर्श डी- 10 के तहत पहला प्रतिवादी पूरे सर्वेक्षण संख्या के संबंध में किरायेदार बन गया, विचारण अदालत के फैसले और वाद भूमि में वादी के आधे हिस्से को जारी करने के आदेश को अपास्त करना होगा। दस्तावेजों और मामले में दस्तावेजो और मौखिक साक्ष्य की सराहना पर, पहली अपीलीय अदालत ने माना कि विभिन्न राजस्व अभिलेखो में प्रविष्टियो से पता चलताहैकि 5 एकड 16 गुंटा की वाद भूमि या तो दूसरे प्रतिवादी की या दो अन्य की किरायेदारो की व्यक्तिगत काश्तकारी में 1960-61 तक थी। यह कभी भी वादी का मामला नहीं था कि उसके पिता ने व्यक्तिगत रूप से कुछ वर्षों के लिए वाद भूमि की खेती की और फिर इसे दो अन्य लोगों को एक-एक वर्ष के लिए पट्टे पर दिया था और फिर से इसकी व्यक्तिगत खेती की गई। यदि प्रथम प्रतिवादी प्रदर्श डी 10 की दृष्टि में पूरी भूमि के संबंध में किरायेदार बिल्कुल नहीं था यह असंभव था कि 1963 तक प्रतिवादी संख्या 1 और 3 द्वारा पहले प्रतिवादी को मुकदमे की भूमि बेचने के लिये क्षेत्राधिकार वाले तहसीलदार की अनुमति प्राप्त करने का प्रयास किया गया था। इसलिये, तहसीलदार द्वारा आदेश पारित किये जाने के लगभ्गा 12 साल बाद मुकदमा दायर किया गया था। उसने पाया कि प्रदर्श डी-14 ने खुलासा किया कि उन दिनो मुकदमे की जमीन पर कब्जा करने वाला किरायेदार अपीलकर्ता था और तहसीलदार के समक्ष कार्यवाही शुरू करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसलिये, प्रथम अपीलीय अदालत ने पाया कि प्रदर्श डी -1 0 के तहत पहला प्रतिवादी केवल 5 एकड 30 गुंटा की उत्तरी सीमा के संबंध में किरायेदार

बन गया, न कि 5 एकड 30 गुंटा की दक्षिणी वाद भूमि के संबंध में और वह 11 एकड 16 गुंटा की सीमा के पूरे विस्तार का किरायेदार था। दस्तावेजों की जांच करने पर, पहली अपीलीय अदालत ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि त्याग विलेख वैध नहीं था और निचली अदालत के इस विचार को बरकरार रखा कि दूसरे प्रतिवादी के पास प्रदर्श डी- 6 के तहत पहले प्रतिवादी को बताए जाने वाले वाद भूमि में कोई अधिकार नहीं था और इसलिए, तीसरे प्रतिवादी द्वारा 3 एकड 26 गुंटा के संबंध में प्रदर्श डी- 12 क्षेत्राधिकार तहसीलदार के अनुमति प्राप्त करने के बाद में निष्पादित नहीं किया गया था जैसा कि बॉम्बे टेनेंसी एंड एग्रीकल्चरल लैंड्स एक्ट, 1948 की धारा 64 (3) के तहत आवश्यक था और और इसलिए, कोई भी अधिकार उस दस्तावेज में पारित नहीं हो सकता था कि प्रदर्श डी-12 शून्य था। विचारण न्यायालय का निष्कर्ष इस संबंध में यथावत नहीं रखा गया था। प्रदर्श डी-6 और 12 वाद भूमि के संबंध में पहले प्रतिवादी को कोई स्वामित्व अधिकार नहीं दिए और वादी और तीसरा प्रतिवादी उस हद तक सह-मालिक थे, लेकिन बॉम्बे टेनेंसी एंड एग्रीकल्चरल लैंड्स एक्ट, 1948 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए उनके वे अधिकार समाप्त हो गए। इसलिए, यह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वादी के मुकदमे को खारिज करने की आवश्यकता है। विद्वान न्यायाधीश ने पाया कि वादी-प्रथम प्रतिवादी का वाद भूमि के संबंध में सह-मालिक के रूप में वाद की तारीख पर कोई दर्जा नहीं था। कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम, 1961 के तहत विशेषरूप से बचाये गये मकान मालिक को और किरायेदारो के अधिकारो के अधीन, किरायेदारी भूमि को सरकार मे निहित करने के दौरान न तो पहले प्रतिवादी और न ही उसके पिता के पास इसके सबंध में कोई अधिकार और इसलिये, उक्त विरोधी आपत्तियां खारिज कर दी गई।

इसके बाद, इस मामले को दूसरी अपील में उठाया गया। उच्च न्यायालय ने 9.3.1985 पर किए गए आदेश और निर्णय द्वारा दूसरी अपील को स्वीकार किया और

प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि वाद भूमि के सह-मालिक के रूप में अपीलार्थी संपूर्ण वाद भूमि कब्जे के लिये दावा की गई राहत का हकदार है। इसके बाद, दूसरी अपील को स्वीकार करते हुये दिनांक 9.3.1995 को पारित आदेश को वापिस ले लिया गया और अपील को नई सुनवाई के लिए नियत कर दिया गया। 17.11.1997 को उच्च न्यायालय ने अंततः 9.3.1995 के फैसले को संदर्भित करने के बाद यह कहते हुए अपील का निपटारा कर दिया कि यह पहले के आदेश से सहमत है लेकिन कुछ अतिरिक्त कारण दिए हैं। यह इस तरह, विद्वान न्यायाधीश ने कहाः

> "यह भी रिकॉर्ड पर रखना आवश्यक है कि इस अपील का निपटान इसन्यायालय के एक अन्य एकल न्यायाधीश द्वारा उपरोक्त अंतिम पेराग्राफ में उल्लिखित तरीके से किया गया है, उस फैसले को पक्षकारो में से एक के विधिक प्रतिनिधियो को पक्षकार ना बनाये जाने की तकनीकी आपत्ति पर वापस ले लिया गया था। हालांकि, जिसे गुण-दोष के आधार पर कानून की स्थिति को ध्यान में रखते हुये निपटाया गया था। मैं पहले के दृष्टिकोण से सहमत हूँ, हालांकि मैं उस दृष्टिकोण के समर्थन में अतिरिक्त बिंदु दिये है।"

विद्वान न्यायाधीश द्वारा अपनाई गई दिशा की सराहना करना मुश्किल है। अगर वे सभी पक्षकार उपस्थित नहीं थे जिन्हें शामिल किया जा सकता था, तब उस पर दिया गया निर्णय वह नहीं होगा जो सभी पक्षों की उपस्थिति में तय किया गया था। इसलिए, जब पहले के आदेश दिनांक 9.3.1995 को वापस ले लिया गया, तो पूरा निर्णय निराशाजनक हो गया और अब विद्वान न्यायाधीश के लिये उस तर्क से सहमत

होने या स्वीकार करने के लिये उपलब्ध नहीं है। हमे मामले का उचित मूल्यांकन करने के लिये तक के उस हिस्से को उसके फैसले के हिस्से के रूप में लेना पड़ सकता है।

क्या अपीलार्थी पंजीकृत विक्रय विलेख प्रदर्श डी-6 दिनांक 26/4/1963 के आधार पर संपूर्ण वाद भूमि का मालिक बन गया है और यदि विक्रय विलेख किसी भी कारण से अमान्य पाया जाता है तो विक्रय विलेख एक्जी डी12 दिनांक 16/12/1960, 5 एकड 12 गुंटा की सीमा के संबंध में वादी पर बाध्यकारी है और क्या किरायेदार के रूप में शेष सीमा के सबंध में उसके अधिकार प्रभावित नहीं होते है और यदि उक्त विक्रय पत्र एक्जी डी 12 भी अमान्य पाया जाता है, तो संपूर्ण वाद भूमि के संबंध में किरायेदार के रूप में उसके अधिकार सुरक्षित है। यह भी देख जाना चाहिये कि वाद भूमि में प्रथम प्रतिवादी द्वारा दावा की गई राहत तर्कसंगत है या नहीं और तीसरे प्रतिवादी के साथ सह-मालिक के रूप में वह पूरे वाद भूमि के संबंध में उन राहतों का हकदार है।

उच्च न्यायालय ने अपने पहले आदेश के दोरान इन पहलुओं पर विचार नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय ने केवल कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम, 1964 की धारा 133 का उल्लेख करते हुए कहा कि राजस्व अभिलेखों में कुछ प्रविष्टियों से संकेत मिलता है कि अपीलार्थी के पास भूमि का कब्जा नहीं था। हालांकि, पहली अपीलीय अदालत ने अधिकार क्षेत्र वाले तहसीलदार द्वारा दिए गए अनुमति के आदेश का उल्लेख करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि चूंकि उक्त दस्तावेज़ में अपीलार्थी को एक किरायेदार के रूप में वर्णित किया गया था, इसलिए, उसे अधिकारो के रिकॉर्ड में दिखाई देने वाली प्रविष्टियो के बावजूद एक किरायेदार के रूप में माना जाना चाहिए। कर्नाटक की धारा 133 के तहत उत्पन्न होने वाली धारणा अपने आप में पर्याप्त नहीं होगी और यदि उसे परेशान किया जा सकता है तो ऐसी धारणा को किसी अन्य सामग्री के संदर्भ में तय किया जा सकता है, उच्च न्यायालय ने कहा कि इसका कोई परिणाम नहीं है।

हालांकि, मामले की परिस्थितियों में प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अंतिम होता है। इसने यह विचार रखा है कि अधिकार क्षेत्र वाले तहसीलदार द्वारा दी गई अनुमति के क्रम में अपीलार्थी का विवरण उस मामले को झुका देगा जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अपीलार्थी पूरी भूमि के संबंध में किरायेदार था। लेकिन उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दूसरे आदेश में विद्वान न्यायाधीश ने विभिन्न सिद्धांतों को निर्धारित किया है जिनका वास्तव में मामले से कोई लेना-देना नहीं है। अदालत को अभिलेख पर दस्तावेजों के प्रभाव की जांच करनी थी और किसी न किसी तरह से निष्कर्ष पर पहुंचना था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इन दस्तावेजों के प्रभाव पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यह स्थापित किया गया था कि अपीलार्थी के पास केवल एक किरायेदार की क्षमता में वाद भूमि का अधिकार था और उसने तब से विचाराधीन बिक्री विलेखों के तहत स्वामित्व प्राप्त नहीं किया था क्योंकि उक्त बिक्री विलेख अमान्य थे।

अब हमारे सामने एक तर्क रखा गया है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये कि मुकदमे की भूमि के संबंध में बिक्री की गई हे, किरायेदार के अधिकार समाप्त हो गये है और मालिकाना अधिकारो को बदल दिया गया है या किरायेदार के अधिकारो को मालिकाना अधिकारो में परिवर्तित कर दिया गया है, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि जब बिक्री लेनदेन को ही अमान्य माना गया है, तो कानून की नजर में कोई लेनदेन नहीं हुआ था और इस तरह के लेनदेन के अभाव में, ऐसी कोई परिस्थिति नहीं थी जो किरायेदार के रूप में उत्पन्न होने वाले अधिकारों को समाप्त कर देती हो । इस प्रकार यह तर्क दिया जाता है कि अधिकार अप्रभावित रहे और इस संदर्भ में, हमारे समक्ष रखे गए तर्क की जांच करना आवश्यक है कि किरायेदारी के मुद्दे को भूमि सुधार न्यायाधिकरण को भेजा जाना चाहिए था और 102 विचारण न्यायालय द्वारा ही निर्णित किया जाना चाहिये था।

कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम की धारा 132 उन मामलो में सिविल अदालतो के अधिकार क्षेत्र पर रोक लगाती है, जिनका निर्णय न्यायाधिकरण द्वारा किया जाना है। कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम की धारा 133 उन मुकदमों और अन्य कार्यवाहियों के लिए प्रावधान करती है जिन्हें अधिनियम के तहत एक न्यायाधिकरण द्वारा तय किया जाना आवश्यक है। कोई भी सिविल अदालत इस सवाल पर कोई निर्णय नहीं ले सकती कि क्या विवादित भूमि एक कृषि भूमि है या उसके कब्जे का दावा करने वाला व्यक्ति 1.3.1974 को उक्त भूमि का किरायेदार है या नहीं। अधिनियम की धारा 5 के तहत सभी किरायेदारीयां 1.3.1974 को समाप्त हो गई। इस प्रकार, कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम की धारा 132 और 133 में जो विचार किया गया है, वह यह है कि यदि 1.3.1974 को कोई मौजूदा किरायेदारी का अधिकार है तो सिविल अदालत को किरायेदारी से संबंधित एक मुद्दा तैयार करना होगा और उसे न्यायाधिकरण को भेजना होगा।

वर्तमान मामले में, पहले प्रतिवादी द्वारा कब्जे सहित विभिन्न राहतो के लिये मुकदमा लाया गया था और उस अधिकार को इस आधार पर पराजित कर दिया गया था कि संबंधित तिथि पर वाद भूमि किराये पर ली गई भूमि थी और इसलिए, 1.3.1974 से उसे स्वामी के रूप में अधिकार नहीं थे और भूमि राज्य में निहित थी और उस आधार पर वाद खारिज कर दिया गया था। यह पहले अपीलार्थी के अधिकारों की घोषणा करने के लिए इतना नहीं है कि इस तरह के निष्कर्ष दर्ज किए गए थे, बल्कि यह अपीलार्थी के दावे को विफल करने के लिए अधिक है। इन कार्यवाहियों में यह तय नहीं किया जाना है कि क्या पहला प्रतिवादी अन्यथा अपने कब्जे की रक्षा कर सकता है या नहीं। प्रथम दृष्टया, पहली अपीलीय अदालत यह नहीं मान सकती थी कि अपीलकर्ता भूमि के संबंध में किरायेदार था और 10-ए और 10-बी के मुद्दों पर निर्णय केवल कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरण द्वारा लिया जाना

चाहिए था। यह प्रश्न कि क्या अधिनियम के लागू होने पर अपीलार्थी विचाराधीन भूमि के संबंध में किरायेदार था या नहीं, सिविल अदालतों द्वारा तय नहीं किया जा सकता था। इसलिए, उच्च न्यायालय, प्रथम अपीलीय न्यायालय और विचारण अदालत द्वारा पारित डिक्रियो को अपास्त किया जाता है और प्रकरण को विचारण न्यायालय को बिंदु 10-ए को, भूमि सुधार न्यायाधिकरण को न्यायनिर्णय और रिपोर्ट करने के लिये भेजा जाता है। इस दौरान, पक्षकार न्यायाधिकरण और विचारण न्यायालय के समक्ष मामलों के निस्तारण तक भूमि के कब्जे के संबंध में तब तक यथास्थिति बनाए रखेंगे।

परिणामस्वरूप, अपील को तदनुसार स्वीकार किया जाता है।

एसकेएस.

अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता नृपेन्द्र सिनसिनवार द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।